DOI: 10.51220/hjssh.v2i1.5

Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities, Vol 2 pp. 33-44, 2007

पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड का दार्शनिक विवेचन

कुसुम डोबरियाल एवं जयकृष्ण गोदियाल

संस्कृत विभाग हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय परिसर पौड़ी गढ़वाल-२४६००१

ABSTRACT

शोधपत्र में पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में वर्णित दार्शनिक सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई है। सृष्टि खण्ड मीमांसा के गुणों से ओत प्रोत तथा योग, सांख्य के सामंजस्य से अपनी विशिष्टता प्रतिपादित करता है।

Key words :- Padma Puran, Shristhi Khand, Philosophy.

INTRODUCTION

'दर्शन शब्द की निष्पत्ति 'दृश' धातु से करण अर्थ है में 'ल्युट' प्रत्यय लगाकर हुई है। जिसका अर्थ है 'जिसके द्वारा देखा जाये, दृश्यतेअनेन्इति है। आँख इन्द्रिय द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उसको 'चाक्षुस प्रत्यक्ष' कहते हैं। अतएव चाक्षुस--प्रत्यक्ष ज्ञान ही दर्शन का अभिप्रेत 'देखा' हुआ है। यह मत स्थूल दर्शनों का है। दूसरे सूक्ष्म दर्शनों का मत है कि कुछ वस्तुएं ऐसी भी हैं, जिनका चाक्षुसप्रत्यक्ष नहीं हो सकता, अर्थात जो आँखों से नहीं देखी जा सकती। उनके लिए सूक्ष्मदृष्टिव्य (तात्विक बुद्धि) की आवश्यकता है। इस सूक्ष्म दृष्टि या तात्विक बुद्धि का दूसरा नाम' प्रज्ञा चक्षु', ज्ञानचक्षु या दिव्यदृष्टि है। मत में दर्शन शब्द का अर्थ हुआ 'जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाये। दर्शन शब्द के इस व्युतपत्तिलब्ध अर्थ का उपनिषदों और दूसरे शास्त्रों में प्रचुरता से प्रयोग मिलता है। मनु और याज्ञवलक्य की स्मृतियों में उपनिषदों के 'आत्मज्ञान' को 'सम्यग्दर्शन' तथा आत्मदर्शन के अर्थ में लिया गया है। अपने सच्चे स्वरूप का दर्शन करना या पहचानना ही 'आत्मदर्शन' है।

दर्शनशास्त्र का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवन और 'दर्शन' एक ही उद्देश्य के दो परिणाम हैं। दोनों का चरम लक्ष्य एक ही है– परमश्रेय की खोज करना। उसी का सैद्धान्तिक रूप दर्शन है और व्यावहारिक रूप जीवन की सर्वांगीणता के निर्माण तक जो सूत्र या तत्व हैं उन्हीं की व्याख्या करना दर्शन का अभिप्राय है। अतः जीवन से सम्बन्धित जितने भी आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक पदार्थ हैं उनका तात्विक विश्लेषण करना भी दर्शन का कार्य हो जाता है। दर्शनविधा की उत्पत्ति का प्रयोजन है– दुःख सामान्य (अशेष दुख) की निवृत्ति और सुख सामान्य

© SHARAD

(उत्तम सुख) की प्राप्ति। विश्व की प्रत्येक जाति का दर्शन उसके समग्र जीवन का प्रतिबिम्ब है। जहां तक भारतीय दर्शन का सम्बन्ध है, उसके अनेक सम्प्रदाय, मत, पन्थ, सिद्धान्त और वाद एक ही आत्मप्राप्ति के उद्देश्य को लेकर आगे बढ़े हैं। उपनिषदों का 'तत्वमसि' महावाक्य ही सबका केन्द्र रहा है, इसकी व्याख्या यद्यपि पृथक–पृथक दृष्टि से की गई है, फिर भी उन सबका एक ही अन्तिम लक्ष्य में समन्वय हो जाता है और वह अन्तिम या परम लक्ष्य है दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति, इस प्रकार दुःख की जिज्ञासा और सुख की लिप्सा ने दर्शन को जन्म दिया।

भारतीय दर्शन की कुछ सामान्य विशेषतायें-

भारतीय दर्शन में अनेक मत, पंथ, सम्प्रदाय और वाद एक ही आत्मप्राप्ति के उद्देश्य को लेकर अग्रसर हुए हैं। यदि दर्शन का प्रयोजन दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है तो इसका अर्थ हुआ कि दुःखमय संसार को देखकर मनुष्य के मन में दर्शन के लिए जिज्ञासा हुई। इसी दुःख की जिज्ञासा और सुख की लिप्सा ने दर्शन को जन्म दिया। ज्ञानी याज्ञवलक्य ने अपनी सहधर्मिणी मैत्रेयी को उस पराविधा (दर्शन) का ज्ञान दिया, जिससे अमरत्व प्राप्त होता है और संसार के समस्त दुःखों से छुटकारा मिल जाता है तथागत बुद्ध के अन्तःकरण में जीवन–मृत्यु के इस अवाध चक्र ने वैराग्य को जगाया। घर छोड़ते हुए पहली बात उन्होंने कही'जीवन क्या है? मृत्यु क्या है इससे कैसे छुटकारा पाया जा सकता है? जब तक मैं इस रहस्य का पता न लगा लूंगा, तब तक कपिलवस्तु को न लौटूंगा। बुद्ध ने दुःख को खोज निकाला और चार आर्य सत्यों– (१–दुःख, २–दुःख का कारण, ३–दुःख का निरोध, ४–दुःख के निरोध का मार्ग) में उसकी उत्पत्ति तथा निवृत्ति का उपाख्यान किया।

महावीर स्वामी के वैराग्य और पदार्थ का उद्देश्य, संसारी जीवों को जन्म–मरण तथा दुःख के बंधन से छुटकारा दिलाकर मोक्ष का मार्ग बतलाना था। इसी मोक्ष प्राप्ति के लिए उन्होंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यग्चरित्र का उपदेश दिया। भारतीय दर्शन के इस दुःखवाद को 'निराशावाद' की संज्ञा देकर और भारतीय जीवन में भी उसकी प्रतिक्रिया को आरोपित कर पाश्चात्य विद्वानों ने आलोचना की है, किन्तु भारत में जीवन की इस गहन गवेषणा को आध्यात्मिक चिन्ता का विषय माना गया है। भौतिक वस्तुओं की हर तरह से परीक्षा किये जाने के उपरान्त ही जीवन में इस प्रकार के चिन्तन का प्रादुर्भाव होता है। ये भोग, बन्धन सभी दुःखमय दर्शन के दुःखवाद के द्योतक है।

धर्म और ब्रहम जिज्ञासा दोनों ही दर्शन के प्रतिपाद्य विषय हैं। दोनों का प्रयोजन (मोक्ष)

निःश्रेयस की प्राप्ति है। जो आध्यात्मविद् है वही धर्म के स्वरूप को जानता है। गीता में ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय बताते हुए श्रीकृष्ण ने कहा है–मेरा ज्ञान प्राप्त करो, सेवा भाव(भक्ति) से मेरा अनुस्मरण करो, और पापकर्मों का विनाश करने के लिए कर्म प्रवृत्ति रखो। (मानुस्वार युध्व च)। ज्ञान, भक्ति और कर्म की इस पावन धारा में अवगाहन करते रहना ही भारतीयों की सनातन परम्परा है और यही वास्तविक भारतीय संस्कृति है।

भारतीय दर्शन दो प्रमुख सम्प्रदायों में अपना विकास करता आया है। वे दो सम्प्रदाय हैं– नास्तिक और आस्तिक। तीन नास्तिक दर्शन हैं और छः आस्तिक दर्शन। नास्तिक दर्शनों के नाम हैं' चार्वाक, बौद्ध व जैन। न्याय वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, और वेदान्त– ये आस्तिक दर्शन है। भारतीय साहित्य के प्राचीनतम अंग वेदों में ही दर्शनों के विचारों का उल्लेख मिलता है। देव और दानव दोनों ही आस्तिकवाद व नास्तिकवाद के प्रतिनिधि वैदिक काल से ही विरोधी विचारधारा को लेकर चले आ रहे थे। आचार्य चार्वाक का नाम प्राचीनतम ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। 'महाभारत' का शान्ति पर्व ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। इस पर्व में भीष्म पितामह ने महाभारतकालीन पांच सम्प्रदायों का उल्लेख किया है जिनके नाम है– सांख्य, योग, पांचरात्र, वेद और पाशुपत।

सांख्यज्ञान की व्यापक भावना को लक्ष्य करके(शांतिपर्व) महाभारत में स्पष्ट किया गया है कि जो महत ज्ञान महान व्यक्तियों में, वेदों के भीतर तथा योगशास्त्रों में देखा जाता है और पुराणों में भी जिसका उल्लेख विभिन्न प्रकार से हुआ है, वह सभी सांख्य से आया है।

पदमपुराण में वर्णित दार्शनिक सिद्धान्त का विस्तृत अध्ययन

पुराण नानारूपों में भासमान जगत के मूल में एक सर्वशक्तिमान तत्व की सत्ता स्वीकार करता है जिसकी सत्ता से यह विश्व स्थिति सम्पन्न है। उसके परम तत्व के विविध नाम हैं। वही विष्णु है (विष्णु पुराण तथा नारदीय पुराण में), वही शिव है(वायु, कूर्म, शिव पुराण में), वही है शक्ति देवी पुराण), तथा वही श्रीकृष्ण है (श्रीमद्भागवत तथा ब्रहमवैवर्त)। उस परम तत्व के दो रूप हैं– निगुर्ण और सगुण। वह दोनों रूपों में विद्यमान रहता है। पुराण ज्ञान, कर्म तथा भक्ति इन तीनों मार्गों का वर्णन करता है परन्तु कलियुग के प्राणियों के लिए उसका विशिष्ट आग्रह भक्ति पर ही है। उसी भक्ति का आश्रयण मनुष्यों को दुःख बहुल संसार के निस्तारण तथा आनन्दपूर्ण स्थिति में पहुंचने के लिए एक मात्र सुगम साधन बतलाया गया है। इस तत्व का प्रतिपादन पद्म पुराण के अतिरिक्त प्रत्येक पुराण में समान है। श्रीमद्भागवत में भक्तितत्व का सर्वांगीण विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

भक्ति के साथ–साथ योग का भी सामन्जस्य पुराणों में प्रतिपादित है।

पद्मपुराण एक दार्शनिक एवं धार्मिक पुराण है। इसके आदिखण्ड का प्रत्येक अध्याय भीष्म और पुलस्त्य जी के संवादों के रूप में मीमांसा दर्शन का बाहुल्य दर्शाता है। ब्रह्मकृतनवविध–सृष्टिनांवर्णनम्' में ब्रहमा जी द्वारा प्राकृत और वैकृतादि नौ तरह की सृष्टि–रचना का वर्णन मिलता है।फलतः सृष्टि के विषय में प्रथमतः जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि इस ब्रहमाण्ड की रचना किसने की? तैतरीय संहिता की स्पष्ट उक्ति है–'ब्रह्मम बह्माभवत् स्वयम्' अर्थात सृष्टि कार्य के लिए ब्रह्मम ही ब्रह्मा हुए। फलतः सृष्टि का मूल वही ब्रह्म है और इसी आदिकर्ता के निर्देश के लिए पहले 'ब्रह्मपुराण' का नाम आता है। ब्रह्मा की उत्पत्ति के विषय में तदन्तर जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। इसका उत्तर पद्मपुराण देता है। अर्थात् ब्रह्म का उदय पद्म कमल से हुआ। तब यह कमल विष्णु की नाभि में था जहाँ उत्पन्न होकर ब्रह्मा जी ने उग्र तपस्या की और फलस्वरूप सृष्टि का निर्माण किया।

जगत की तथा नाना पदार्थो की उत्पत्ति अथवा सृष्टि 'सर्ग' कहलाती है। जब मूल प्रकृति में तीन गुण क्षुब्ध होते हैं तब महत्तत्व की उत्पत्ति होती है। महत्तत्व तीन प्रकार के–तामस, राजस, तथा सात्विक अहंकार से ही पंचतन्मात्रा (भूतमात्र) इन्द्रिय तथा पंच भूतों की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति क्रम का नाम सर्ग है। यह सृष्टि वर्णन दर्शनिकता को द्योतित करता है।

पद्म पुराण की सात्विक पुराणों में गणना है। सर्ग–प्रतिसर्ग वर्णन में विष्णु तथा पद्म पुराण में पर्याप्त साम्य है। किन्तु पुराणों का सात्विक, राजस और तामस विभाजन श्रेष्ठ, मध्यम और निकृष्ट कोटि को वर्णित करना नहीं है। सत्व, रज और तम ये तीन विश्व के मूल उत्पादक हैं। इनका अर्थ है सामंजस्य, सक्रियता और निष्क्रियता। त्रिगुण के स्वभाव को व्यक्त करने के लिए लोहित शुक्ल तथा कृष्ण का लाक्षणिक प्रयोग 'पुराणों तथा 'महाभारत' में अनेक बार हुआ है। इन्ही तत्वों को लेकर भगवान ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीन रूप धारण किये हैं। ब्रह्मा जगत के उत्पादक, विष्णु पालक और महेश संहारक हैं। यह सम्पुर्ण नाम रूप क्रियात्मक जगत भगवत्स्वरूप से अलग नहीं है। इन त्रिविध गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है। पद्म पुराण के सृष्टि खण्ड में 'सृष्टिप्रकारवर्णनम्' में भगवान के तीनों स्वरुपों के दर्शन होते हैं। सृष्टि और सृष्टिकर्ता, पाल्य और पालक, संहरणीय–सब कुछ मात्र प्रभु ही है–

सृष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च।

उपसंहियते चापि संहर्ता च स्वयं प्रभुः।।

जिस प्रकार मंत्र संहिताओं में 'पुरूष एवेदं सर्वम्' तथा उपनिषदों में 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतियाँ परमात्मा सर्वस्वरुप है, इस बात का प्रतिपादन करती है, ठीक वैसे ही पद्मपुराण भी भगवान को सर्वात्मक स्वीकार करता है। सृष्टिखण्ड के 'सृष्टिप्रकारवर्णनम्' में यह तथ्य सुस्पष्ट है। अर्थात मन से जो संकल्प विकल्प होता है, चक्षुरादि इन्द्रियों से जिन–जिन वस्तुओं का ग्रहण होता है, वे चाहे देश के रूप में हो, काल के रूप में हो, अथवा वस्तु के रूप में हों, सब भगवान के ही स्वरूप हैं। इस सम्बन्ध में उपनिषदादि समस्त शास्त्रों के साथ पद्मपुराण की एववाक्यता है। श्रुतियां ज्ञाननिर्वृत्य होने के कारण प्रपंच को मिथ्या स्वीकार करती हैं, पुरुष का बोध करके स्थायु का बोध होता है, ठीक वैसे ही पद्म्पुराण की प्रपंच की भ्रान्तिजन्यता और परमात्मा के अतिरिक्त अन्य वस्तु की असत्ता प्रतिपादित करता है। अर्थात हे जगत्पते! एकमात्र तुम्हीं परमात्मा हो, आपके अतिरिक्त और कोई नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत ज्ञानस्वरुप ही है, इस बात को न जानने वाले अज्ञानीजन जगत को विषरूप देखते हैं और अज्ञानमय संसार सागर में भटकते रहते हैं, उन्हें पार जाने का मार्ग ही नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त सृष्टि खण्ड में परमात्मा के निर्विशेष स्वरुप का स्पष्ट प्रतिपादन है। परमात्मातत्व के साक्षात्कार के लिए जीव को ज्ञान और ध्यान की शरण लेनी चाहिए।श्रवण मनन से सुनिष्पन्न अर्थ में चित्त की स्थापना अथवा भगवतस्मृति की परिपक्व परिगणत अवस्था का नाम ही 'ध्यान' है। वह ध्यान, तीर्थ, व्रत भागवत गीता महात्म्य, साधुसंग ब्राह्मणस्वरुप पूजा आदि के द्वारा भगवत्स्मृति को जगाने के लिए किया जाता है। जैसे श्रुतियां ज्ञान के द्वारा ही तत्वसाक्षात्कार का निरूपण करती हैं, ठीक वैसे ही पद्मपुराण भी परमगति को प्राप्त कराने वाले तत्वज्ञान का अव्यवहित भगवद्स्मृति है। इसी तत्व के प्रतिपादन में समस्त पुराणों की अपूर्वता है और यही पद्मपुराण के प्रत्येक खण्ड में विशद् रूप से भक्ति की महिमा का वर्णन है। केवल महिमा का ही नहीं उसके अंगोपांग– मंत्र–जाप, पूजा, ध्यान इत्यादि का भी अन्य पुराणों की अपेक्षा अत्यन्त श्रेष्ठ शैली से निरूपण किया गया है।

सृष्टिक्रमवर्णनम् में बह्म ही महत्तत्व से लेकर विशाल ब्रह्माण्ड की सृष्टि करता है– कहा है। भीष्म जी द्वारा पुलस्त्यजी से कई ऐसे दर्शनिक प्रश्न पूछे गये हैं जो इस खण्ड में उपलब्ध होते हैं, जैसे–यज्ञ के द्वारा मनुष्य इस मानव देह को त्याग कर स्वर्ग और अपवर्ग भी प्राप्त कर सकते हैं तथा

और भी जिस–जिस स्थान को पाने की इच्छा हो, उस–उसमें जा सकते हैं। योगदर्शन का भी सुन्दर व सजीव प्रस्तुतीकरण आदिखण्ड में है। पुलस्त्यजी, भीष्म जी को बताते हुए कहते हैं कि– योगियों को अमृतस्वरुप ब्रह्मधाम की प्राप्ति होती है जो परम पद माना गया है। ये योगी सदा एकान्त में रहकर यत्नपूर्वक ध्यान में स्थित रहते हैं उन्हें वह उत्कृष्ट पद प्राप्त होता है जिसका ज्ञानीजन ही साक्षात्कार कर पाते हैं।

सांख्य और योग की पदार्थों के विषय में एक सी मान्यताऐं हैं। केवल एक ही विषय ऐसा होता है जिसमें योग सांख्य से बहुत दूर हो जाता है। वह विषय है–ईश्वर का अस्तित्व। जिसे योग सृष्टि के लिए आवश्यक समझता है। सांख्य में सृष्टि रचना के विकास में ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रकृति या अव्यक्त से सृष्टि रूप के विकसित होने के लिए चेतन के सहयोग की आवश्यकता होती है उसे सांख्य में पुरुष के संयोग से प्रकृति चेतन के समान ही काम करती है। परन्तु योग का कहना है कि अचेतन प्रकृति कुछ भी निर्धारित करने में असमर्थ है। इसलिए ईश्वर अवश्य है। इसी आधार पर सांख्य को निरीश्वर और योग के बिना सांख्य को पंगु कहा गया है। प्रस्तुत पुराण के आदि खण्ड में योगशास्त्र का बाहुल्य पाया जाता है। भक्ति के साथ–साथ प्रचुर वर्णन इस खण्ड में मिलता है। यह वर्णन दो प्रकार से किया गया है– कई स्थलों में योग साधन की क्रियाओं का प्रत्यक्ष रूप से संकेत दो प्रसंगों में किये गये मिलते हैं। पहला किसी विशेष व्यक्ति की तपश्चर्या के वर्णन के अवसर पर योग का आश्रय लिये जाने का संकेत तथा किसी महान व्यक्ति के इस भौतिक शरीर को छोड़ने का जहाँ भी वर्णन है वहां योगमार्ग का आलम्बन कर प्राणत्याग की धटना का संक्षिप्त परन्तु मार्मिक उल्लेख होता है।

इस प्रकार महापुरुषों जैसे–दधीचि, सती, अदिति आदि योगनिष्ठ तपस्वियों के योग प्रसंग सृष्टि खण्ड में वर्णित हैं। देवहूति सांख्यशास्त्र प्रवर्तक कपिल मुनि की पूजनीय माता थी। बहुत आग्रह करने पर कपिल ने उन्हें योग की शिक्षा दी। परिणाम यह हुआ कि देवहूति ने अपना देहत्याग समाधि के द्वारा किया। सती के शरीरदाह की कथा योगाग्नि द्वारा निष्पन्न हुई जो कि योगक्रिया का यथार्थ उदाहरण है, जो आदि खण्ड में उपलब्ध होता है। ऐसे ही कई प्रसंग अन्य पुराणों में उपलब्ध होते हैं। नारद जी के उपदेश से व्यास जी ने भगवान की विविध लीलाओं का वर्णन करने पर विचार किया। तदनुसार उन्होंने सरस्वती नदी में पश्चिम तट पर स्थित शम्याप्राप्त नामक आश्रम में आसन लगाकर भगवान का ध्यान लगाया। उनका निर्मल मन इतने ढंग से समाहित हुआ कि उन्होंने भगवान

का साक्षात्कार कर लिया। इस योग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अष्टांगयोग भक्ति के साथ नितान्त सम्बद्ध है। वास्तविक योगी केवल शुष्क साधक नहीं है, प्रत्युत भगवान की उत्तम भक्ति से आप्लाव्यमान हृदय वाला परम भागवत है। बिना भक्ति के समाधि की निष्पत्ति कथमपि नहीं हो सकती।

ध्यान योग का आवश्यक अंग है जिसके द्वारा प्रचेता ऋषि ने पुष्पवाहन नामक चक्रवर्ती राजा की पूर्वजन्म सम्बन्धी बातें योग के द्वारा जानी और भक्ति के प्रमुख अंगव्रत के माध्यम से स्वयं को प्रभु के चरणों में अर्पित करने का उपदेश भी दिया। योगदर्शन सम्बन्धि कई प्रसंग आदिखण्ड में उपलब्ध होते हैं, जैसे ब्रह्मा जी द्वारा विष्णु का ध्यान करना। पुष्कर को आकाश स्थिति का १२ वर्षों तक ऋषियों द्वारा प्राणायाम में स्थित होकर तपस्या करना, शंकर का योग द्वारा धैर्य धारण कर योगमाया से मदन को बाहर निकालना, शैलजा का तप बल पर शंकर को पाने की लालसा,तप बल हिरण्यकश्यपु द्वारा वरदान प्राप्ति, माया द्वारा हिरण्यकश्यपु का प्रलयंकारी दृश्य उपस्थित करना, प्राणायाम युक्त गायत्री मन्त्र को जप करने से पापों से मुक्ति, योग द्वारा समाधि की भूमिका में लीन माण्डव्यऋषि, गौतम ऋषि का योगक्रिया द्वारा इन्द्र की दुश्चेष्टायें मालूम करना आदि।

पौराणिक सृष्टि–विद्या में सांख्य–दर्शन के द्वारा निर्दिष्ट सृष्टिविद्या का विशेष आवलम्बन तथा आश्रयण लिया गया है। पद्म्पुराण सृष्टिखण्ड में भी सांख्य तथा वेदान्त का मंजुल सामन्जस्य है, अर्थात प्रकृति–पुरूष के द्वैत का प्रतिपादक सांख्य अद्वय ब्रह्म में द्योतक वेदान्त के साथ मिलकर पौराणिक दर्शन की मूलभित्ति तैयार करता है। प्रकृति तथा पुरुष दो भिन्न तत्व नहीं है, प्रत्युत वे दोनों ब्रह्म के द्वारा प्रेरित होकर ही अपने कार्य के सम्पादन में समर्थ होते हैं। पद्मपुराण आदिखण्ड में सांख्यज भक्ति के अन्तर्गत प्रधान (मूल प्रकृति) एवं पुरुष आदि २५ तत्वों का स्पष्ट कथन है।

भक्ति की व्याख्या से पूर्व इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ जानना आवश्यक है। 'भक्ति' शब्द सेवा के अर्थ में प्रयुक्त संस्कृत धातु "भज्' से 'क्तिन' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। धीरे–धीरे यह शब्द विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा– 'मय्यर्पित– मनोबुद्धया मद्भक्तः स में प्रियः'। अर्थात जिसने अपने मन एवं बुद्धि को मुझे समर्पित कर दिया है, वह भक्त मुझे प्रिय है। नारद ने भक्ति की विशद् व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा है कि– 'सा त्वस्मिन परमप्रेमारुपा अमृतस्वरूपा चा' तत्रापि माहात्म्यज्ञान– विस्मृत्यपवादः तद्विधहीनं जाराणिमिव। अर्थात भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरुपा अमृतस्वरुप है। इसमें (भक्ति) ईश्वर के महात्म्यज्ञान का विस्मरण

नहीं होना चाहये। माहात्म्यज्ञान से रहित भक्ति व्यभिचारियों के प्रेम के समान है।उपरोक्त अभिप्राय को एक वाक्य में प्रस्तुत करने पर कहा जा सकता है कि भगवान के माहात्म्य का ज्ञान रखते हुए श्रद्धा एवं प्रेम के भाव के साथ उसके प्रति अपने को समर्पित कर देना ही 'भक्ति' है।

भारतीय वाङ्मगमय में 'नारद भक्ति सूत्र ' ही ऐसा ग्रन्थ है जिसमें ज्ञान और कर्म की अपेक्षा भक्ति को प्रमुखता दी गई है। नारद ने भक्ति को कर्म ज्ञान और योग की अपेक्षा श्रेष्ठतर बताया है। उन्होंने मोक्ष प्राप्ति का साधन भक्ति को ही बताया है। भक्ति के साधनों में महर्षि ने विषय वासनाओं का त्याग, अखण्ड भजन, भगवत्गुण श्रवण, कीर्तन, महापुरुषों की कृपा और ईश्वर की अनुकम्पा का उल्लेख किया है। भक्ति के बाधक तत्वों में उन्होंने कुसंगति का त्याग अनिवार्य बताया। सूत्रग्रन्थों मे भक्ति का केवल सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत किया गया है। उसके व्यावहारिक पक्ष का विकास पौराणिक साहित्य में आकर हुआ। पुराणों में अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुई। विष्णु षट् ऐश्वर्यों से युक्त होने के कारण 'भगवत्' कहलाए और उनकी पूजा करने वाले भागवत् कहलाये।पुराणों में इसी भागवत धर्म की प्रतिष्ठा हुई। श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध के ८७ वें अध्याय में वेदस्तुति का तात्पर्य कर्म तथा ज्ञान के समान भक्ति का प्रतिपादन करना है। अतः पुराणों के कर्ता वेदव्यास को भी यह अर्थ अभिलक्षित प्रतीत होता है।

श्रीमद्भागवत में भक्तितत्व की मीमांसा बड़े विस्तार से की गई है।नवलक्षण भक्ति के रुप है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, संख्य तथा आत्मनिवेदन। इस क्रम में एक मनोवैज्ञानिक आरोहण है कि:— भक्ति आरम्भ होती है भगवान के श्रवण से, भगवान के नाम तथा गुणों के स्त्रोत भक्ति की आरम्भिक सीढ़ी है जो कीर्तन, स्मरण आदि सोपानों से चढ़कर साधक को आत्मनिवेदन के द्वारा भगवद्प्रसाद में पहुंचा देती है। आत्मसमर्पण इसी श्रंखला की अन्तिम कड़ी है। भगवान के नामों में जपने का फल पुराणों में बड़े विस्तार के साथ वर्णित है। जिस प्रकार भगवान के स्वरुप तथा गुण का वर्णन करना असंभव है उसी प्रकार उनके नामों का वर्णन करना भी असंभव है। सामान्य रुप से उन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—१. गुणनाम २. कर्मनाम।कुछ नाम तो भगवान के गुणों के आधार पर निश्चित किये गये हैं। जैसे— भक्तवत्सल नाम। भगवान के भक्तों के प्रेमी होने के कारण यह नाम उन्हें दिया गया है। कर्मनाम भगवान के किसी विशिष्ट कर्म को लक्षित कर निर्दिष्ट है, जैसे— हरि तथा कंस निषूदन आदि नाम। पापों के हरण कर्ता होने के कारण भगवान का नाम 'हरि' है तो पापाचारी कंस को मारने को कारण उन्हें कंसनिषूदन नाम प्राप्त हुआ

है।

पदम् पुराण के अनुसार कीर्तन समाज या व्यक्ति में उत्पन्न हो जाने वाला धर्म विरोधी या बाधा डालने वाली प्रवृत्तियों के निराकरण के लिए विशेष उपयोगी और सहायक है। यह एक सीधी व सरल, साथ ही प्रभावशाली उपासना पद्वति है जो कहीं और सभी अवस्थाओं में प्रयुक्त की जा सकती है, परन्तु इसमें मन व भावों की शुद्धता का ध्यान रखना अनिवार्य है। केवल अच्छे सुर में और भक्ति–भाव का अभिनय करते हुए कीर्तन व्यर्थ होता है। यदि शुद्ध हृदय से तन्मयता पूर्वक कीर्तन किया जाय तो इससे बहुत शीघ्र परमात्मा की भक्ति का विकास होता है। पद्मपुराण सृष्टि खण्ड में और भी कई दोष बताये गये हैं जिनका कीर्तन में त्याग करना आवश्यक है। जैसे किसी सत्पुरुष की निन्दा न करें, राम, कृष्ण, शिव आदि नामों में भेदभाव न रखें, गुरू की अवज्ञा, श्रुति एवं निन्दा करें। हरिनाम को प्रशंसात्मक समझाा जाय, 'मै' ओ 'मेरा' का ध्यान न रखना आदि।

पद्म पुराण के आदिखण्ड में पुष्करतीर्थ नामक प्रसंग में भक्ति तीन प्रकार की बतलाई गई है–मानस, वाचिक, कायिक। इसके अतिरिक्त भक्ति के तीन भेद, इस प्रकार हैं

१. लौकिक

२. वैदिक

३. आध्यात्मिक

इस प्रकार नाना पुराणों में भक्ति के नाना प्रकार बताये गये हैं। पद्म पुराण आदि खण्ड में कई ऐसे प्रसंग हैं जो मनुष्य को परलोक में उत्तम गति से प्राप्त करवाते हैं, ऐश्वर्य की कामना वाले को दान का विधान करने को कहते हैं। सूर्योपासना नामक प्रसंग में भी सूर्य की उपासना की प्रशंसा की गई है। जिसके करने से स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त होता है जो रोगनाशक ऐश्वर्य प्रदान करने वाला, राज्य सुख प्रदान करने वाला है।'सूर्यमाहात्म्य प्रसंगादमद्रेश्वर नामक मध्यदेशनृपतिकथनकम्' में राजा भद्रेश्वर के द्वारा सूर्य भगवान की विधिवत अर्चना करने से उसके कुष्ठ रोग का निवारण हुआ तथा पुरावासियों सहित दिव्यधाम की प्राप्ति हुई। इस प्रकार अनेकों कथानक भक्ति से सम्बन्धित आदिखण्ड में वर्णित हैं। जैसे–चण्डिकायापूजाफल निरुपणम्, दुर्गायापूजाविधिनिरुपणम, चन्द्रपूजाविधिवर्णनम्, आदि।

मानवीय आत्मा की चरम आकांक्षा इतनी ऊंची है कि वह इस परिवर्तनशील संसार के सीमित

भागों से पूर्ण हो सकती तथा उसकी स्थाई पूर्ति कर्मबन्धन से प्रतीयमान जगत के सुख–दुखों से तथा सब प्रकार की सीमाओं एवं उपाधियों से सर्वथा छूटने में ही है। सांसारिक जीवन के परम उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए यह आवश्यक है कि मानवीय आत्मा अपने को अज्ञान और अहंकार से इच्छाओं एवं वासनाओं से, सांसारिक प्रतिष्ठा एवं समृद्धि की आसक्ति से भौतिक दृष्ट एवं दूसरों के साथ प्रतिस्पर्द्धा भाव से मुक्त करे तथा निःस्वार्थ प्रेम, अविचलन शान्ति, निरतिशय ज्ञान तथा समस्त भूतों के साथ अभेदबुद्धि सम्पादित करे और इस प्रकार भगवान के साथ अभेद सम्बन्ध स्थापित करे। जैन, बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, योग और वेदान्त सभी दार्शनिक मोक्ष की सत्ता में एकमत हैं। अविद्या से उत्पन्न होने वाले जितने भी राग द्वेषादि बन्धन हैं उन्हें ज्ञान से काटकर मनुष्य मोक्ष दशा आती है। जन्म–मरण की श्रंखला केवल अज्ञानियों के लिए ही अनन्त है। ज्ञानोदय के साथ ही मोक्ष दशा आती है। यह मोक्ष कहीं दूसरी जगह से आने वाली चीज नहीं हैं अपितु अपनी आत्मा स्वाभाविक दशा का ज्ञान ही मोक्ष है। यथार्थ में वह सच्चिदानन्द अपना ही स्वरूप है जो अविधा और कर्म बन्धनों से आच्छन्न रहता है। इसलिए उपनिषदों में आत्मसाक्षात्कार को ही मोक्ष कहा गया है। भारतीय दर्शन में कहीं–कहीं हमें मोक्ष की परिभाषा यही मिलती है–

'आत्मनः स्वरुपेणावस्थानं मोक्षः' अर्थात आत्मा का निजी रुप में रहना ही मोक्ष है। मोक्ष शब्द'मोक्ष' धातु में 'धम्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न हुआ जिसका अर्थ है– मुक्ति या छुटकारा। उननिषदों के अनुसार जन्म–मरण का कारण अविद्या अथवा अज्ञान है और मोक्ष का कारण ज्ञान है। कठोपनिषद के अनुसार सांसारिक सुखों की स्पृहा इच्छा ही अविद्या है और इनसे निवृत्त होना ही विद्या अर्थात ज्ञान है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' के उद्घोष से सम्पूर्ण उपनिषदें प्रतिध्वनित है'। भारतीय दार्शनिक परम्परा में मोक्ष के विषय के भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण पाये जाते हैं जिनका संक्षिप्त स्वरुप निम्न प्रकार है–

चार्वाक दर्शन के अनुसार देह नाश ही मोक्ष है। जैन दर्शन आवरणभंग को मोक्ष मानता है। बौद्ध सम्प्रदाय में अलग–अलग मत हैं।समस्त दुःखों के कारणों का नाश व यर्थात ज्ञान होना ही बौद्ध दर्शन का मोक्ष है। बौद्ध दर्शन में मोक्ष के लिए ही 'निर्वाण'शब्द का प्रयोग मिलता है। सांख्यदर्शन में त्रिविध दुःखों की ऐकान्तिक और आत्यन्तिक निवृत्ति को मोक्ष माना गया है। इसमें मोक्ष के स्थान पर कैवल्य का प्रयोग मिलता है। योगदर्शन में भी मोक्ष के लिए 'कैवल्य' शब्द का व्यवहार किया गया है। न्यायवैषेशिक दर्शन में 'शरीर षडन्द्रियाणी षटविषया, षडबुद्धयः सुखं दुखंन्व', २१ दुःख कहे गये

हैं। इन दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति एवं प्रवृत्ति रहित शान्त अवस्था ही न्यायदर्शनुसार मोक्ष है।

'पद्मपुराण' के आदिखण्ड में साधन भक्ति अर्थात सेवा श्रवण, कीर्तन, जप आदि का सर्वाधिक महत्व है। मोक्ष विषयक इन तत्वों की महत्ता प्रस्तुत खंठ में सुविस्तृत वर्णित है। पद्म पुराण के 'श्राद्धकर्मवंसर्णनम्' नामक अध्याय में श्राद्ध दर्शन का अनूठा वर्णन किया गया है। पितरों के निमित्त किया जाने वाला श्राद्ध भोग और मोक्ष फल प्रदान करता है। यह ब्रह्मा जी द्वारा पद्म पुराण में स्पष्ट किया गया है। 'तीर्थमहिमा प्रसंग' में भी तीर्थों के दर्शन मात्र से सांसारिक बन्धन से छुटकारा बताया गया है। पद्म पुराण में योगदर्शन व सांख्य का अनूठा सामंजस्य है इसलिए कैवल्य अर्थात केवल उसी को होना मोक्ष प्राप्ति को द्योतित करता है। आदि–खण्ड में समाधि का आश्रय लेकर अनेक ऋषि–मुनि, राजा तथा साधारण मनुष्यों व साधकों ने कैवल्य को प्राप्त किया है। समाधि अर्थात इन्द्रियों को निग्रहीत करना और मन के समस्त संकल्पों को शून्य कर लेना ही समाधि है। अतः कैवल्य की प्राप्ति में समाधि का सहयोग पद्म पुराण में सर्वोपरि माना गया है 'गायत्र्या ब्रह्मव्रतविधानम्' में गायत्री मन्त्र को चारों वेदों में गुरूतर माना गया है। गायत्री के उच्चारण मात्र से पापराशि से मुक्ति मिल जाती है तथा स्वर्ग और मोक्ष दोनो प्राप्त होते हैं। व्रत जो भगवान प्राप्ति में समर्थ होता हे, मोक्ष प्रदान करने, वाला भी माना गया है। ऐसा एक कथन 'विभूतिद्वादयादिषष्टिव्रतकथनम्' में है जिसमें मोक्षव्रत के वर्णन में बतलाया गया है कि उपवासी रहकर त्रिकाल वस्त्र स्वं आभरणों से द्विजदम्पति का पूजन करें इससे मोक्ष मिलता हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत पुराण का प्रत्येक अध्याय दार्शनिक तत्वों की विवेचना प्रस्तुत करता है। मीमांसा के गुणों से ओतप्रोत आदिखण्ड उसकी दार्शनिकता को घोषित करता है। इसके अतिरिक्त योग, सांख्य के सामंजस्य से पद्म पुराण के आदिखण्ड का वैशिष्ट्य स्वतः ही प्रतिपादित होता है। वस्तुतः पुराणों में भगवान के निर्गुण–निराकार, सगुण साकार आदि विविध रुपों में से किसी एक रुप को अपना लक्ष्य बनाकर उनकी ओर अग्रसर होने का सुगम मार्ग दिखलाया गया है यही पुराणों की महत्ता का प्रधान कारण है जो इनकी दर्शनिकता का द्योतक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. देवीभागवत्–वैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई

२. पद्म पुराण–पं. श्री रामशर्मा द्वारा सम्पादित, संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर

बरेली(प्रथमखण्ड, ४६६पृष्ठ)

३. पद्म पुराण–कल्याण अंक गीता प्रेस, गोरखपुर

४. पद्म पुराणम्–श्री महामुनि वेदव्यास प्रणीतम्, ५ क्लाइब रोड़ कलकत्ता–१, १६५७

५. पुराण दिग्दर्शन–पं. माधवाचार्य शास्त्री रचित, माधव पुस्तकालय प्रकाशन, देहली

६. पुराणतत्व मीमांसा–श्री कृष्णमणि त्रिपाठी, वाराणसी,१६६१

७. पुराणपर्यालोचनम्– चौखम्भा, सुरभारती ग्रन्थमाला प्रकाशन, वाराणसी–१,

८. पुराण विमर्श– आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी–१.

९. ब्रह्म पुराण– मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता

१०. ब्रह्म पुराण– संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर, बरेली

११. भागवत पुराण(देवी) –पण्डित प्रकाशन, वाराणसी

१२. भारतीय दर्शन–डा. वाचस्पति गैरोला, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद

१३. भारतीय दर्शन– बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, काशी, १६६२

१४. विष्णु पुराण–वैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई

१५. संकल्प सूर्योदय का समीक्षात्मक अध्ययन–डा.जयकृष्ण गोदियाल, शोध प्रबन्ध, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, १६८१